

**UNIVERSITY OF CALICUT  
SCHOOL OF DISTANCE EDUCATION**

**STUDY MATERIAL FIRST SEMESTER**

**B.A./B.Sc PROGRAMME  
(2019 ADMISSION ONWARDS)  
CBCSS  
COMMON COURSE IN HINDI  
HIN1 A07 (1) PROSE AND DRAMA**



**Prepared by**

**Dr. PRASEEJA N.M.**  
Assistant Professor in Hindi on Contract  
School of Distance Education  
University of Calicut

## **CONTENTS**

### **Module -1**

1. हरिबिन्दी - मृदुला गर्ग
2. शवयात्रा - ओमप्रकाश वाल्मीकि
3. नाखून क्यों बढ़ता है - हज़ारी प्रसाद द्विवेदी

### **Module -2**

4. सोना - महादेवी वर्मा
5. सदाचार का तावीज़ - हरिशंकर परसाई

### **Module - 3**

6. सकुबाई - नादिरा ज़हीर बब्बर

## MODULE -1

# हरी बिन्दी

मृदुला गर्ग

मृदुला गर्ग जी का जन्म 25 अक्टूबर, 1938 को हुआ। आपने अर्थशास्त्र में एम. ए. किया है। पश्चात् दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन के कार्य में निरत रहीं।

गर्ग साठोत्तरी कहानी साहित्य में एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। समकालीन कथासाहित्य में मृदुला जी अपने आधुनिक दृष्टिकोण और सशक्त वाणी के लिए पहचानी जाती हैं। उनकी कहानियों में नारी की मानसिकता की विभिन्न परतें अत्यन्त सूक्ष्मता एवं शालीनता के साथ खुलती जाती हैं। अपने चारों ओर फैले मनुष्य जीवन की विभिन्न सम्बन्धों की सूक्ष्मता को, परिवर्तित परिवेश में अनुभव कर रहे घुटन को, और रूढ़ मान्यताओं से जर्जरित व्यक्ति की असहाय स्थिति को अत्यन्त बारीकी से लेखिका ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

उनकी अनेक कहानियाँ, प्रस्तुत जीवन की विषमता और विकलांगता को बेबाकी के साथ अनावृत करती जाती हैं। साथ ही अपने बेलौस चित्रण से, पाठकों को वस्तु स्थिति के प्रति सचेत भी करती हैं। विशिष्ट कथा, बंध, नयी-नयी लगने वाली नायिका, पात्र सृष्टि, विशेष एफेक्ट डालने वाला कथा- शिल्प आदि लेखिका को हर एंगल से आधुनिक, नैसर्गिक और संयत सृष्टि प्रदान कर जाते हैं। गर्ग का स्त्रीवादी रवैया, विद्रोहात्मक नहीं है। स्त्री के प्रति रहे सहानुभूति को, उसे सम्पूर्ण समाज के अंग के रूप में स्वीकार करते हुए अभिव्यक्त करती हैं। कात्यायनी के विचारों में- “मृदुला जी यह साफ कर देती हैं वे स्त्री की उपेक्षा या उसकी अस्मिता

के प्रश्न जैसे किसी भी सवाल को, स्वतंत्र स्वायत्त रूप में नहीं देखतीं, बल्कि पूरे समाज की अन्य विसंगतियों के साथ देखती हैं।”

लीक से हटकर सोचने के लिए मजबूर करने वाली उनकी कहानियाँ, पाठकों से विशिष्ट संवेदना की माँग रखती हैं। परम्परागत बद्ध नैतिक मान्यताएँ एवं पारिवारिक सम्बन्धों के जड़मूल विश्वास पर जहाँ एक ओर आघात गर्ग करती हैं तो दूसरी ओर, उस नयेपन को, नयी संवेदना को मानने और महसूसने के लिए भी मजबूर करती हैं। उन्हीं के शब्दों में- “यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि मानने और महसूसने के बीच अन्तराल होता है। जो हम वाकई महसूस करते हैं, उसे नकारकर दूसरी मान्यताओं को अपने पर लादे रहते हैं। क्योंकि पुनर्विचार तकलीफदेह होता है। उससे बचने के चक्कर में, महसूसते हुए को मानने में हमें काफी समय लग जाता है। मेरी कहानियाँ पहले आघात करती हैं, फिर मानने और महसूसने का अन्तर मिटने पर स्वीकृत हो जाती है।”

मृदुला गर्ग की प्रसिद्ध कृतियाँ हैं- दुनिया का कायदा, टुकड़ा- टुकड़ा आदमी, डेफोडिले जल रहे हैं, ग्लेशियर से, उर्फ मैम, शहर के नाम, हरी बिन्दी इत्यादि।

### सारांश

हरी बिन्दी की नायिका एक घर-गृहस्थी में बंधी एक पारंपरिक भारतीय महिला है जिसका नैत्य-शेड्यूल अपने पति की दिनचर्या और सामान्य दैनिक जीवन के अनुरूप बिताना है। लेकिन पति के दिल्ली से बाहर चले जाने के कारण वह अपने एक दिन जो उसे मिला है, बड़ी जिंदादिली से बिताना चाहती है। इसलिए वह सुबह जल्दी उठने के बजाय अपनी टिक-टिक करती अलार्म घड़ी को बंद कर देती

है; एक कप कॉफी के संग ऊपरी मंजिल से सुहावने मौसम को निहारती है और फिर अकेले ही एक आउटडोर टूर का प्रबंध करती है। अपनी इस यात्रा को वो चाट खाकर सिनेमा देखकर रस्ता में एक अजनबी के साथ कॉफी पीकर और उसके साथ कार शेयरिंग करके मूर्त रूप देती हैं। अब तक की कहानी बिल्कुल भी मोड़ नहीं लेती लेकिन अचानक उस अजनबी द्वारा की गई प्रशंसात्मक टिप्पणी इस कहानी के नामकरण और एक आत्मनिर्भर व स्वच्छन्द होती नारी को निरूपित करने में अपने आप को समर्थ पाती है। होता यह है कि वह महिला जब बाहर निकलती है तो नीला सूट पहनती है और अपने माथे पर लाल बिंदी लगाती है लेकिन पता नहीं क्यों एकाएक वह उस बिंदी को हटाकर 'हरी' बिंदी माथे पर लगा लेती है। (उस समय उसे खुद को काँच में देखकर हलकी हंसी भी आती है कि अगर अभी उसके पति होते तो टिप्पणी करते, सूट तो नीला और बिंदी हरी क्या बेमेल चॉइस है।) अब इसी श्रृंगार पर वह अजनबी जब उसे गाड़ी से घर ड्रॉप करता है तो कहता है कि 'आप पर हरी बिंदी बहुत जँच रही है'।

### प्रश्न और उत्तर

प्रश्न : हरी बिन्दी का क्या मतलब है?

उ : पति दिल्ली गया है। उस दिन पति का कोई पाबंदी नहीं है। अपने निजी संसार में वह एक दिन गुजरती है। अपने इस से मेल न होने वाली हरी बिन्दी वह लगाती है। इस अनमेल बिन्दी ही दूसरे पुरुष के आकर्षण का, उसकी आत्मीयता का कारण भी बन जाता है। अथवा उसका कहना है - 'मैंने' आज से पहले किसी को हरी बिन्दी लगाए नहीं देखा।

## शवयात्रा

### ओमप्रकाश वाल्मीकि

ओम प्रकाश वाल्मीकि का जन्म 30 जून 1950 को ग्राम बरला, जिला मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश में हुआ। आपका बचपन सामाजिक एवं आर्थिक कठिनाइयों में बीता।

आपने एम. ए. तक शिक्षा ली। पढ़ाई के दौरान उन्हें अनेक आर्थिक, सामाजिक और मानसिक कष्ट व उत्पीड़न झेलने पड़े।

वाल्मीकि जी जब कुछ समय तक महाराष्ट्र में रहे तो वहाँ दलित लेखकों के सम्पर्क में आये और उनकी प्रेरणा से डॉ. भीमराव अम्बेडकर की रचनाओं का अध्ययन किया। इससे आपकी रचना-दृष्टि में बुनियादी परिवर्तन आया।

आप देहरादून स्थित आर्डिनेंस फैक्टरी में एक अधिकारी के पद से पदमुक्त हुए। हिन्दी में दलित साहित्य के विकास में ओमप्रकाश वाल्मीकि की महत्वपूर्ण भूमिका है। आपने अपने लेखन में जातीय-अपमान और उत्पीड़न का जीवंत वर्णन किया है और भारतीय समाज के कई अनछुए पहलुओं को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। आपका मानना है कि दलित ही दलित की पीड़ा को बेहतर ढंग से समझ सकता है और वही उस अनुभव की प्रामाणिक अभिव्यक्ति कर सकता है। आपने सृजनात्मक साहित्य के साथ-साथ आलोचनात्मक लेखन भी किया है।

आपकी भाषा सहज, तथ्यपूर्ण और आवेगमयी है जिसमें व्यंग्य का गहरा पुट भी दिखता है। नाटकों के अभिनय और निर्देशन में भी आपकी रुचि थी। अपनी

आत्मकथा 'जूठन' के कारण आपको हिन्दी साहित्य में पहचान और प्रतिष्ठा मिली। 1993 में उन्हें डॉ. अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ है और 1995 में परिवेश सम्मान।

17 नवम्बर 2013 को देहरादून में आपका निधन हो गया।

आपकी प्रमुख रचनाएँ हैं- सदियों का संताप, बस बहुत हो चुका, अब और नहीं, शब्द झूठ नहीं बोलते, चयनित कविताएँ (कविता संग्रह)। सलाम, घुसपैठिए, अम्मा एंड अदर स्टोरीज, छतरी (कहानी संग्रह)। जूठन (आत्मकथा)। दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र, मुख्य धारा और दलित साहित्य, सफाई देवता, दलित साहित्य : अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ। (आलोचना)। दो चेहरे, उसे वीर चक्र मिला था (नाटक)।

### सारांश

दलित नेता जहाँ दलितों के उद्धार की तमाम बातें करते हैं। वहीं सामाजिक स्तर पर गाँवों में रहना भेद है कि दलित ही दलित की विरोध और शोषण करते हैं। दलितों में चमार, जाटव और बल्लार निम्न जातियाँ हैं। इनमें बल्लार सबसे निम्न हैं और चमार भी उनको छूना पसंद नहीं करते हैं। ऐसे ही एक बल्लार सुरजा की कहानी है 'शवयात्रा'।

दलित चमारों के गाँव में बल्लारों का एक परिवार था, जो अतिदलित था। चमारों और बल्लारों के बीच एक सीमा की तरह जोहड़ था। बरसात के दिनों में

जब जोहड़ पानी से भर जाता था तब बल्हारों का संपर्क चमारों की गाँव से एकदम कट जाता था। यानी बल्हारों के गाँव तक जाने का कोई रास्ता नहीं था।

बल्हार के परिवार में सिर्फ दो जन ही रह गए थे- सूरजा जिसकी उम्र ढल चुकी थी और उसकी विधवा बेटी सन्तो। घर-बाहर के तमाम जिम्मेदारियाँ सन्तो ने सँभाल रखी थी। सूरजा काफी कमज़ोर थे फिर भी गाँव के छोटे-मोटे काम वह कर ही देता था। सूरजा का एक बेटा भी था, जिसका नाम है कल्लू जो छोटे उम्र में घर छोड़कर भाग गया था। कुछ साल इधर-उधर भटकने के बाद उसे रेलवे में काम मिला। फिर वह पढ़े-लिखकर वहीं फिटर बन गया। अब वह कल्लू से कल्लन बन गया था। सन्तो की शादी की सारी खर्चा कल्लन ने ही उठाया था। बाद में कल्लन एक पढ़ी-लिखी लड़की से शादी करके वहाँ रहने लगे। कभी-कभी ही वह गाँव आता था। तब चमार लोग उसे अजीब नज़रों से देखते थे। चमार लोगों को उसका कल्लू से कल्लन होना स्वीकार नहीं था। गाँववाले उसे कल्लू बल्हार ही कहकर बुलाते थे। इसलिए कल्लन को भी गाँव आना पसंद नहीं था।

इसबार वह गाँव आया तो पिताजी से अपने साथ दिल्ली आकर रहने का अनुरोध किया। लेकिन पुरखों के ज़मीन छोड़कर दिल्ली जाने के लिए सूरजा तैयार नहीं था। वह घर का पुनर्निमाण चाहता था। पर कल्लन घर का पुनर्निमाण नहीं चाहता था। पर कल्लन घर का पुनर्निमाण करना नहीं चाहता था क्योंकि पिताजी के मरने के बाद वह गाँव नहीं आयेगा और सन्तो को तो वह अपने साथ दिल्ली ले चलेगा। यह बात उसने साफ-साफ सूरजा से कहा तो वह भड़क गया।

सूरजा के जिद के कारण कल्लन ने गाँव में पिता के लिए मकान बनवाने का निर्णय लिया और इसके लिए परिवार सहित गाँव आया। मकान बनवाने के प्रबन्ध



करने के लिए उन्होंने सुरजा से कहा। यह सुनकर सुरजा को बहुत खुश हुआ। और वह मकान बनवाने के लिए ठेकेदार से मिलते गया। उसे परम दरिद्र सुरजा को भाया नहीं। इसलिए फिर बात करेंगे कहकर टाल दिया। सुरजा गाँव के पुराना कारीगर साबिर मिस्तरी से मिलने गया तो साबिर ने अगले दिन आने का वादा देता है। जब सुरजा मिस्तरी से मिलकर वापस आया तो मकान बनवाने के लिए ईंट आ चुकी थीं। गाँव के लोगों को यह देखकर ईर्ष्या हुई। कीर्तन सभा मुख्य रामजीलाल ग्राम मुख्य के पास जाकर अनुमति माँगने को कहता है। यह बात ग्राम मुख्य बलराम सिंह के कानों तक पहुँच गया कि सुरजा बल्हार पक्का मकान बनवा रहा है। बात फैलते-फैलते इतनी फैल गयी कि मकान नहीं गाँव की छाती पर हवेली बनेगी। ग्राम के मुख्य सुरजा को बुलाकर घर बनाने से इनकार करता है। और यह भी कहता है कि वह ज़मीन गाँव की मुख्या के बाप-दादों की है। उनकी बात न मानेंगे तो गाँव से बाहर कर देने की धमक्की भी देता है। सुरजा घर आकर मन यह निश्चय कर लेता है कि चाहे कुछ भी हो जाय घर बनवाकर ही रहूँगा।

कल्लन ने सुरजा को समझाने की कोशिश कि लेकिन वह मानने को तैयार नहीं था। कल्लन अजीब-सी दुविधा में फँस गया था। कल्लन भावावेश में घर बनाने के लिए आया था लेकिन अब वह निराश है। इसी बीच कल्लन की बिटिया सलोनी को बुखार हुई। गाँव में एक डॉक्टर था। लेकिन वह सलोनी को देखने मना कर दिया क्योंकि कल्लन बल्हार था इसलिए। बिटिया का बुखार बढ़ता गया। उसे शहर के डॉक्टर के पास ले जाने का निश्चय किया।

कल्लन और उसकी पत्नी सरोज, दोनों सलोनी को लेकर शहर जाने के लिए निकला। गाँव से आठ-दस किलोमीटर दूर पर था शहर। इसलिए जाने के लिए

कल्लन ने गाँव के संपन्न चमारों से बैलगाड़ी माँगी थी। लेकिन कल्लन बल्हार होने से किसी ने भी गाड़ी नहीं दी। कल्लन ने सलोनी को पीठ में लादकर चलने लगा। शहर के करीब आते ही बिटिया मर जाती है। बेसहारा कल्लन और पत्नी सड़क के किनारे शव लिटा दिया। देर तक बैठने से कोई नहीं आया। एक आया तो वह मूँह फेरकर चला गया क्योंकि वह आदमी चमार था। दोनों शव को कंधों में रखकर गाँव की ओर लौटा। शवदाह में कोई मदद करने को तैयार नहीं है। गाँव के श्मशान में दफनाने से इनकार हो गया तो दूर के श्मशान में दफनाना पड़ता है। तो ये चारों शव, उपले लेकर चलते हैं तो उन्हीं की तरह दलित चमार हँसी उड़ाती हैं। सुरजा कहता है गाँव अब रहने लायक नहीं। ओम प्रकाश वाल्मीकि मानते हैं कि दलित विमर्श तब तक सार्थक नहीं जब तक दलितों का आंतरिक भेदभाव नहीं मिट जाता।

### पश्न और उत्तर

प्रश्न : चमारों से बल्हार सुरजा को क्या-क्या तिरस्कार झेलना पड़ा?

उ : चमार अपनी जाति से निम्नतर दलित बल्हारों को हेठी समझते हैं। उसके जीवन की प्रगति से वे ईर्ष्यालू हैं। इसलिए नए मकान बनाने से वे एक जुट होकर बाधा पैदा करते हैं। ठेकेदार से मिस्त्री तक को वे रोकते हैं। बिटिया का इलाज करने को चमार डॉक्टर तैयार नहीं होता है। शहर जाने के लिए बैलगाड़ी वे देते नहीं है। मुर्दा सलोनी को सड़कर के किनारे पाकर अनदेखा वह करता है। शवदाह की लकड़ी वे देते नहीं है। जाति के आधार पर बहिष्कृत जीवन बिताने के लिए बल्हार परिवार अभिशप्त है। मानविकता तक यहाँ स्वाहा हो गया है।

## नाखून क्यों बढ़ता है?

हजारी प्रसाद द्विवेदी

हजारी प्रसाद द्विवेदी का जन्म 19 अगस्त, 1907 (श्रावण, शुक्ल पक्ष, एकादशी, संवत् 1964) में बलिया जिले के 'आरत दुबे का छपरा' गाँव के एक प्रतिष्ठित सरयूपारी ब्राह्मण कुल में हुआ था। उनके पिता पण्डित अनमोल द्विवेदी संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। द्विवेदी जी के प्रपितामह ने काशी में कई वर्षों तक रहकर ज्योतिष का गम्भीर अध्ययन किया था। द्विवेदी जी की माता भी प्रसिद्ध पण्डित कुल की कन्या थीं। इस तरह बालक द्विवेदी को संस्कृत के अध्ययन का संस्कार में ही मिल गया था।

सन् 1930 में इंटर की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद द्विवेदी जी प्राध्यापक होकर शान्ति निकेतन चले गये।

सन् 1940 से 1950 ई. तक वे बहाँ पर हिन्दी भवन के निर्देशक के पद पर काम करते रहे। शान्ति निकेतन में सवीन्द्र नाथ टैगोर के घनिष्ठ सम्पर्क में आने पर नये मानवतावाद के प्रति उनके मन में जिस आस्था की प्रतिष्ठा हुई, वह उनके भावी विकास में बहुत ही सहायक बनी। क्षितिजमोहन सेन, विधुशेखर भट्टाचार्य और बनारसीदास चतुर्वेदी की सन्निकटना से भी उनकी साहित्यिक गतिविधि में अधिक सक्रियता आयी।

द्विवेदी जी की भाषा परिमार्जित खड़ी बोली है। उन्होंने भाव और विषय के अनुसार भाषा का चयनित प्रयोग किया है। उनकी भाषा के दो रूप दिखलाई पड़ते हैं-

1. प्रांजल व्यावहारिक भाषा
2. संस्कृतनिष्ठ शास्त्रीय भाषा

‘हिन्दी साहित्य की भूमिका’ उनके सिद्धान्तों की बुनियादी पुस्तक है। जिसमें साहित्य को एक अविच्छिन्न परम्परा तथा उसमें प्रतिफलित क्रिया-प्रतिक्रियाओं के रूप में देखा गया है। नवीन दिशा-निर्देश की दृष्टि से इस पुस्तक का ऐतिहासिक महत्व है। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी की मुख्य रचनाएँ “सूर साहित्य, कबीर, अशोक के फूल, हिन्दी साहित्य की भूमिका, हिन्दी साहित्य का आदिकाल, नाथ सम्प्रदाय हैं।”

प्रमुख रूप से आलोचक, इतिहासकार और निबंधकार के रूप में प्रख्यात द्विवेदीजी की कवि हृदयता यूँ तो उनके उपन्यास, निबन्ध और आलोचना के साथ-साथ इतिहास में देखी जा सकती है, लेकिन एक तथ्य यह भी है कि उन्होंने बड़ी मात्रा में कविताएँ लिखी हैं। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी को भारत सरकार ने उनकी विद्वता और साहित्यिक सेवाओं को ध्यान में रखते हुए साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में 1957 में ‘पद्म भूषण’ से सम्मानित किया था।

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी मृत्यु 19 मई, 1979 में हुई थी।

### सारांश

‘नाखून क्यों बढ़ते हैं’, द्विवेदीजी का प्रसिद्ध निबन्ध है। उन्होंने भावप्रधान विनोदमयी ललित शैली के द्वारा इस निबन्ध को विचारपूर्ण तथा रोचक बनाया है।

लेखक का मत है कि नाखून मनुष्य के आदिम- हिंसक प्रवृत्ति का प्रतीक है। मनुष्य नाखूनों को बार बार काटकर अपनी हिंसक प्रवृत्ति को दबाने का संकेत करता

है, लेकिन, फिर भी वे उग आते हैं। मानव मन में हिंसा और अहिंसा का यह संघर्ष हमेशा होता रहता है। इस विचार के बल पर लेखक ने इस लेख में जगत की युद्ध और शांति की समस्या को प्रस्तुत किया है।

कुछ लाख वर्ष पहले जब मनुष्य जगलों में था, वन मानुष जैसा था, तब नाखूनों और दांतों को स्वरक्षा के लिए प्रयोग में लाता था। दांतों से अधिक नाखून ही उस के इस काम में आते थे। फिर धीरे धीरे पत्थर, पेड़ों की डालियाँ आदि बाह्य वस्तुओं के सहारे वह शत्रुओं को पछाड़ता था। उस समय अपनी ही हड्डियों से शस्त्र बनाना उसने सीखा। इस का प्रमाण हमें इन्द्र के वज्रायुध से मिलता है जो वेदकालीन ऋषि दधीचि की हड्डियों से बनाया गया था। कुछ और आगे बढ़ने पर मनुष्य ने लोहे के हथियारों का आविष्कार किया, जिन से उन दिनों के राजा लोग असुरों को परास्त करने में देवताओं की भी सहायता कर सके थे। समय आगे बढ़ता चला। मनुष्य के हथियारों में भी परिवर्तन होता रहा। उस ने तोप, बन्दुक, बम, बम-वर्षक वायुयान तथा वनीनतम शस्त्र एटम बम तक को प्राप्त किया। इस प्रकार पहले भी करोड़ों गुना शक्तिशाली अस्त्र शस्त्रों के निर्माण और उपयोग में मनुष्य की अपूर्व प्रगति रही। फिर भी प्रकृति उस के भीतरवाले शस्त्र को उस में बनाये रखती है; नाखून सहज में बढ़ते रहते हैं।

अपने को सभ्य माननेवाला मनुष्य नाखून को अब नहीं चाहता। क्यों कि वह उसे बर्बर युग को याद दिलाता है। शायद माता-पिता इसलिए ही बच्चों को नाखून बढ़ाते डांटते हैं। लेकिन नाखून के काटने से क्या, मनुष्य की बर्बरता घटती नहीं। दूसरे महायुद्ध के सिलसिले में जापान के हिरोषिमा में एटम बम के गिराने से जो

हत्याकांड हुआ था, उस से सिद्ध हुआ कि इन लाखों वर्षों के व्यतीत होने पर भी मनुष्य की हिंसा वृत्ति पहले की तरह बनी रहती है।

पहले शस्त्र के रूप में ही नाखून का उपयोग होता था, लेकिन बाद में मनुष्य ने उसे सुकुमार विनोद के केलिए उपयुक्त करना भी सीखा, सहस्रों वर्ष पहले वात्स्यायन-रचित कामसूत्र से पता चलता है कि भारतीयों ने नाखून बढा कर त्रिकोण, वर्तुलाकार, चन्द्राकार आदि विविध आकृतियाँ देकर सुन्दर बनाया था, तथा मोम, अलक्तक आदि विविध आकृतियाँ देकर सुन्दर बनाया था, तथा मोम, अलक्तक आदि रगड़ कर चमकीले और आकर्षक कर लिया था। चाहे सुन्दर बनावे चाहे असुन्दर छोड़े, नाखून बढने ही है। प्राणिविज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार नाखून का बढना मानशरीर की सहजवृत्तियों में एक है। नख बढा लेने की सहजवृत्ति मनुष्य की पशुता का प्रमाण है, उसे काटने की प्रवृत्ति उस की मनुष्यता की निशानी है। पशु बन कर मनुष्य आगे बढ नहीं सकता, अस्त्र बढाना मनुष्य के आदर्श के विरुद्ध है।

अस्त्र बढाने की, अर्थत् पशुता को प्रकट करने की सहज वृत्ति को रोकने केलिए हमें भारतीय संस्कृति की महिमामयी परंपरा का अवलंबन करना चाहिए। ‘अपने आप परर अपने आप के द्वारा’ लगाया हुआ बन्धन हमारी संस्कृति की विशेषता है। वह ‘स्व’ का बन्धन हमारे लिए नयी बात नहीं। यह हमारे दीर्घकालीन संस्कारों का फल है। इसलिए हम ने अंग्रेजी के Indpendence शब्द की परिभाषा ‘अनधीनता’ न रखकर ‘स्वाधीनता’ रखे है। ‘अनधीनता’ या ‘स्वधीनता’ रखी है। ‘अनधीनता’ का अर्थ है, किसी की अधीनता का अभाव, और स्वाधीनता का अर्थ है, ‘अपने ही अधीन में रहना’। 15 अगस्त को ने ‘स्वाधीनता दिवस’ मनाया। अर्थात् समाज के सुख केलिए ‘स्व’ के बन्धन में रह कर आज़ादी का सुख भोगने

का निर्णय किया। स्वतंत्रता स्वराज्य, स्वाधीनता सब में 'स्व' का बन्धन है। यह बन्धन हमारी सांस्कृतिक परंपरा से उत्पन्न है। भारत वर्ष में अनेक जातियाँ आयी, लड़ती झगड़ती रही, फिर प्रेम पूर्वक बस गये। इन समस्त वर्गों ओर जातियों का एक समान्य आदर्श है। वह आदर्श हमारे पुराने ऋषि-मनुनियों से अनुप्राणित 'स्व' के बन्धन में अपने को बांधने का आदर्श है। संयम, समवेदना, श्रद्धा, तप, त्याग आदि मनुष्य मात्र की विशेषताएं हैं। जो उसे पशु से व्यतिरिक्त कर देती है। निर्वैर्यभाव, सत्य, अक्रोध, दानशीलता, अहिंसा आदि मानवीय गुणों को प्राप्त करने तथा आत्मनिर्मित बन्धन में बद्ध रहने की शिक्षा हमें बराबर मिलती रहती थी। यही हमारी महान परंपरा है।

जब बड़े बड़े नेता लोग सुख वैभव को बढ़ाने के लिए मशीन बैठाने और उत्पादन की वृद्धि करने का उपदेश दे रहे थे तब हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा- “असली सुख के लिए हिंसा को दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम और आरामपोषण की बात सोचो।” गाँधीजी ने जो कहा, वह भारतीय परंपरा के अनुकूल ही था। लेकिन मनुष्य की बरबरता ने उन पर गोली मारी; इस प्रकार नाखून बढ़ने की प्रवृत्ति, अर्थात्, हिंसा की जीत हुई।

प्राणिविज्ञान कहता है कि मनुष्य का अनावश्यक अंग अपने आप झड़ जायेगा, जिस प्रकार उसकी पूंछ झड़ गयी थी। उसी प्रकार एक दिन नाखून का बढ़ना भी शायद बन्द होगा, उस दिन उस को पशुता भी मिट जाने की संभावना है। तब मरणास्त्रों के निर्माण का कार्य भी बन्द होगा; तब तक इस बात से बच्चों को परिचित कराना आवश्यक है कि नाखून का बढ़ना मनुष्य के मीतर की पशुता की

निशानी है, उसे बढ़ने न देना मनुष्य की अपनी इच्छा है, आदर्श है। अस्त्र-शस्त्रों को बढ़ाना पशुता, का द्योतक है, उसे रोकना मनुष्यत्व के लिए आवश्यक है। दूसरों के प्रति घृणा करना पशुत्व है, दूसरों के मनोभावों का आदर करना मनुष्य-धर्म है। मनुष्य नाशकारी अस्त्रों के आविष्कार से सफलता प्राप्त कर सकता है, लेकिन उस की चरितार्थता, प्रेम, मैत्री और स्त्याग में है।

लेखक यह आशा प्रकट करते हैं कि सहजवृत्ति के कारण चाहे मनुष्य हिंसक प्रयत्नों में लगे रहे, फिर भी उस का मानवीय धर्म हिंसी को पराजित कर के शांति और अहिंसा को स्थापित करने में कामयाबी हासिल करेगा।

‘नाखून क्यों बढ़ते हैं ?’ के चयनित गद्यांशों की व्याख्या

**व्याख्या अंश-१**

“कुछ लाख ही वर्षों की बात है, जब मनुष्य जंगली था, वनमानुष जैसा। उसे नाखून की जरूरत थी। उसकी जीवन- रक्षा के लिए नाखून बहुत जरूरी थे। असल में वही उसके अस्त्र थे। दाँत भी थे, पर नाखून के बाद ही उनका स्त्रान था। उन दिनों उसे जूझना पड़ता था, प्रतिद्वन्द्वियों को पछाड़ना पड़ता था, नाखून उसके लिए आवश्यक अंग था।”

प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के द्वारा लिखे गए निबंध ‘नाखून क्यों बढ़ते हैं?’ से उद्धृत किया गया है।



‘नाखून क्यों बढ़ते हैं?’ के संबंध में अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए आचार्य द्विवेदी ने यह बतलाने की चेष्टा की है कि यह कौतुहल हर किसी के मन में होता है, विशेषकर बच्चों के मन में कि नाखून क्यों बढ़ते रहते हैं? एक बार जब उन्हें काट दिया जाता है तो उन्हें बढ़ना नहीं चाहिए, किंतु वे हैं इतने निर्लज्ज कि बार-बार काटने पर भी फिर बढ़ने लगते हैं।

आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि आदिम युग में मनुष्य असभ्य था। उस समयता की आरंभिक स्थिति थी। मनुष्य वनमानुष जैसा जंगली था। जंगली जानवरों और अपने शत्रुओं से रक्षा करने के लिए उसके पास एक अनोखा और हमेशा प्रभाव में रहने वाला हथियार था और वह हथियार था- उसके बड़े- बड़े नाखून। ये नाखून उसके अस्त्र अर्थात् हथियार थे। आत्मरक्षा के लिए उसे अपने आसपास के लोगों से संघर्ष करना पड़ता था और उन्हें परास्त भी करना पड़ता था। ऐसी स्थिति में ये नाखून ही उसकी मदद करते थे। हालाँकि उसके पास नाखूनों के अलावा दाँत भी थे, किंतु नाखून की तुलना में दाँतों का स्थान दूसरे स्थान पर था। इसलिए नाखून उसके लिए बहुत ही आवश्यक और उपयोगी अंग था।

#### व्याख्या अंश-२

“पर उसके नाखून अब भी बढ़ रहे हैं। अब भी प्रकृति मनुष्य को उसके भीतरवाले अस्त्र से वंचित नहीं कर रही है, अब भी वह याद दिला देती है कि तुम्हारे नाखून को भूलाया नहीं जा सकता। तुम वही लाख वर्ष पहले के नखदन्तावलम्बी जीव हो-पशु के साथ एक ही सतह पर विचरने वाले और चरने वाले।”

प्रस्तुत गद्यांश आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के द्वारा लिखे गए निबंध ‘नाखून क्यों बढ़ते हैं?’ से उद्धृत किया गया है।

‘नाखून क्यों बढ़ते हैं?’ के संबंध में अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए आचार्य द्विवेदी ने यह बतलाने की चेष्टा की है कि यह कौतुहल हर किसी के मन में होता है, विशेषकर बच्चों के मन में। आलोच्य निबंध में यह प्रश्न लेखक से उनकी छोटी लड़की ने एक दिन पूछा था कि आदमी के नाखून क्यों बढ़ते हैं? लड़की पूछकर चली जाती है, किंतु प्रश्न बार-बार चिंतन के धरातल पर लेखक को झकझोरता रहता है। व्याख्या का अंश इसी प्रसंग से चिंतन का अगला पड़ाव है। पुरातन मनुष्य को आत्मरक्षा के लिए पहले नाखून, फिर दाँत और उसके बाद पत्थर के ढेले और पेड़ की डालें और उसके पश्चात् हड्डियों के हथियार बनाने पड़े थे। जब सभ्यता का विकास हुआ तो लोहे के अस्त्र और शस्त्र भी बनाए गए और उसके बाद आत्मरक्षा का यह सिलसिला बमवर्षक वायुयान और एटम बम से भी आगे बढ़ता चला गया। इस पर भी आचार्य द्विवेदी का कहना है कि सब कुछ परिवर्तित हो रहा है, सभ्यता के विकास की गति बढ़ रही है, किंतु नाखूनों का बढ़ना उसी तरह जारी है।

आचार्य द्विवेदी कहते हैं कि भौतिक-सभ्यता के विकास की इतनी ऊँचाइयों तक पहुँचने के बाद भी यह प्रकृति मनुष्य के शरीर के अंदर से उत्पन्न होने वाले भीतरी अस्त्रों से उसे मुक्त नहीं कर पा रही है। उसके नाखून जब-जब भी बढ़ते हैं, उसे प्रकृति यह स्मरण कराती है कि सब कुछ भुलाया जा सकता है, किंतु तुम्हारे नाखूनों को नहीं भूलाया जा सकता, विश्वास नहीं किया जा सकता। हे मनुष्य! आज तुम चाहे चाँद की सतह का स्पर्श करने वाले सभ्य मनुष्य हो, किंतु यह मत भूलो कि

तुम वही लाख वर्ष पहले के वह व्यक्ति हो जो पशु के साथ एक ही सतह पर विचरण करते थे और घास-फूस का भक्षण कर अपने नाखूनों और दाँतों से अपने जीवन की रक्षा करते थे।

1. 'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए?

'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' नामक निबंध में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मनुष्य की आदिम प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट किया है कि नाखूनों का बढ़ना मनुष्य की उस अंध सहजात वृत्ति का परिणाम है, जो उसके जीवन में सफलता ले आना चाहती है, उसको काट देना उस स्व-निर्धारित, आत्म-बंधन का फल है जो उसे चरितार्थता की ओर ले जाती है। नाखून का बढ़ना मनुष्य के भीतर की पशुता की निशानी है और उसे नहीं बढ़ने देना मनुष्य की अपनी इच्छा है। मनुष्य का अपना आदर्श है।

2. आदिम युग में मनुष्य आत्म-रक्षा के लिए कौन सा हथियार उपयोग में लाता था?

आदिम युग में मनुष्य असभ्य था। उस समय सभ्यता की आरंभिक स्थिति थी। मनुष्य वनमानुष जैसा जंगली था। जंगली जानवरों और अपने शत्रुओं से रक्षा करने के लिए उसके पास एक अनोखा और हमेशा प्रभाव में रहने वाला हथियार था और वह हथियार था- उसके बड़े-बड़े नाखून। ये नाखून उसके अस्त्र अर्थात् हथियार थे। आत्म-रक्षा के लिए उसे अपने आसपास के लोगों से संघर्ष करना पड़ता था और उन्हें परास्त भी करना पड़ता था। ऐसी स्थिति में ये नाखून ही उसकी मदद करते थे।

वह ऐसी कौन सी वस्तु है, जो मनुष्य को इस बात का अनुभव कराती है कि तुम वही लाख वर्ष पहले के जीव हो, जो पशु के साथ एक ही सतह पर विचरण करते और चरते थे?

नाखून जब-जब भी बढ़ते हैं, मनुष्य को प्रकृति यह स्मरण कराती है कि सब कुछ भूलाया जा सकता है, किंतु तुम्हारे नाखूनों को विस्मृत नहीं किया जा सकता। प्रकृति मनुष्य को अनुभव कराती है कि आज तुम चाहे चाँद की सतह का स्पर्श करने वाले सभ्य मनुष्य हो, किंतु यह मत भूलो कि तुम वही लाख वर्ष पहले के वह व्यक्ति हो जो पशु के साथ एक ही सतह पर विचरण करते थे और घास-फूस का मक्षण कर अपने नाखूनों और दाँतों से अपने जीवन की रक्षा करते थे।

3. मानव-शरीर की अभ्यासजन्य सहज वृत्तियाँ कौन- कौन सी हैं?

मानव-शरीर में बहुत-सी अभ्यासजन्य सहज वृत्तियाँ रह गयी हैं। दीर्घकाल तक उनकी आवश्यकता रही है। अतएव शरीर ने अपने भीतर एक ऐसा गुण पैदा कर लिया है कि वे वृत्तियाँ अनायास ही, और शरीर के अनजान में भी, अपने-आप काम करती हैं। नाखून का बढ़ना उसमें से एक है, केश का बढ़ना दूसरा है, दाँत का दुबारा उठना तीसरा है, पलकों का गिरना चौथा है।”

## MODULE 2

### सोना

#### महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म होली के दिन 26 मार्च, 1907 को फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश में हुआ था। महादेवी वर्मा के पिता श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा एक वकील थे और माता श्रीमती हेमरानी देवी थीं। महादेवी वर्मा के माता- पिता दोनों ही शिक्षा के अनन्य प्रेमी थे। महादेवी वर्मा को ‘आधुनिक काल की मीराबाई’ कहा जाती है। महादेवी जी छायावाद, रहस्यवाद के प्रमुख कवियों में से एक हैं। कविता में रहस्यवाद, छायावाद की भूमि ग्रहण करने के बावजूद सामयिक समस्याओं के निवारण में महादेवी वर्मा ने सक्रिय भागीदारी निभाई।

महादेवी वर्मा की प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई। महादेवी वर्मा ने बी. ए. जबलपुर से किया। महादेवी वर्मा अपने घर में सबसे बड़ी थीं उनके दो भाई और एक बहन थी। 1919 में इलाहाबाद में ‘क्रॉस्थवेट कॉलेज’ से शिक्षा का आरम्भ करते हुए महादेवी वर्मा ने 1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संस्कृत में एम. ए. की उपाधि प्राप्त की।

उन दिनों के प्रचलन के अनुसार महादेवी वर्मा का विवाह छोटी उम्र में ही हो गया था विवाह के बाद भी उन्होंने अपनी शिक्षा जारी रखी। महादेवी वर्मा की शादी 1916 में ‘डॉ. स्वरूप नरेन वर्मा’ के साथ इंदौर में 9 साल की उम्र में हुई, वो अपने माँ-पिताजी के साथ रहती थीं क्योंकि उनके पति लखनऊ में पढ़ रहे थे।

महादेवी जी कवयित्री होने के साथ- साथ एक विशिष्ट गद्यकार भी थीं- ‘यामा’ में उनके प्रथम चार काव्य संग्रहों की कविताओं का एक साथ संकलन हुआ है। महादेवी जी के काव्यसंग्रहों में नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा, यामा, सप्तपर्णा हैं। रचनात्मक गद्य के अतिरिक्त ‘महादेवी का विवेचनात्मक गद्य’ में तथा ‘दीपशिखा’, ‘यामा’ और ‘आधुनिक कवि महादेवी’ की भूमिकाओं में उनकी आलोचनात्मक प्रतिभा का भी पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। महादेवी वर्मा ने गद्य, काव्य, शिक्षा और चित्रकला सभी क्षेत्रों में नए आयाम स्थापित किए। इसके अतिरिक्त उनके 18 काव्य और गद्य कृतियाँ हैं जिनमें ‘मेरा परिवार’, ‘स्मृति की रेखाएँ’, ‘पथ के साथी’, ‘शृंखला की कड़ियाँ’ और ‘अतीत के चलचित्र’ प्रमुख हैं।

सन् 1955 में महादेवी जी ने इलाहाबाद में ‘साहित्यकार संसद’ की स्थापना की और पं. इलाचन्द्र जोशी के सहयोग से ‘साहित्यकार’ का सम्पादन सँभाला। यह इस संस्था का मुखपत्र था। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद 1952 में वे उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्या मनोनीत की गईं। 1956 में भारत सरकार ने उनकी साहित्यिक सेवा के लिए ‘पद्म भूषण’ की उपाधि और 1969 में ‘विक्रम विश्वविद्यालय’ ने उन्हें डी. लिट्. उपाधि से अलंकृत किया। इससे पूर्व महादेवी वर्मा को ‘नीरजा’ के लिए 1934 में ‘सेकसरिया पुरस्कार’, में ‘स्मृति की रेखाओं’ के लिए ‘द्विवेदी पदक’ प्राप्त हुए। 1943 में उन्हें ‘मंगला पसाद पुरस्कार’ एवं उत्तर प्रदेश सरकार के ‘भारत भारती पुरस्कार’ से सम्मानित किया गया। ‘यामा’ नामक काव्य संकलन के लिए उन्हें भारत का सर्वोच्च साहित्यिक सम्मान ‘ज्ञानपीठ पुरस्कार’ प्राप्त हुआ।

महादेवी अपनी काव्य-भाषा की निर्मात्री स्वयं ही हैं, यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा। अभिव्यक्ति की जी सामर्थ्य, भाव व्यंजना का जो मार्मिक सौष्ठव, आपकी भाषा वहन करती है, वह अन्यत्र पंतजी में ही प्राप्त होता है। आपकी भाषागत कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

- आपकी भाषा का एक विशिष्ट स्तर है, जो स्वभावतः संस्कृत शाब्दावली की ओर झुका हुआ है। तत्सम शब्द प्रधान होते हुए भी इस भाषा रूप में क्लिष्टता या रुक्षता नहीं हैं। उसमें प्रवाह है, लय है।
- महादेवी जी की रचना-शैली की प्रमुख विशेषताएँ उसकी भावतरलता, वैयक्तिकता, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता, आलंकारिकता, छायावादी तथा रहस्यात्मक अभिव्यक्ति आदि हैं।

महादेवी वर्मा का निधन 11 सितम्बर, 1987 को प्रयाग में हुआ।

### सारांश

‘सोना हिरनी’ महादेवी वर्मा का रेखाचित्र है जिसमें उन्होंने अपनी पालतू हिरनी के माध्यम से मानवीय करुणा को स्वर दिया है। सोना हिरनी की माँ को किसी शिकारी ने मार दिया। उस शिशु की रक्षा में माँ ने प्राण त्यागने पर शिकारी उस नवजात को उठा लाया। शिकारी के बच्चों ने उसे दो-चार दिन पाला पर अंत में महादेवी जी को दे गये।। और महादेवी जी के यहाँ उसका पालत-पोषण हुआ।

सुनहरे रंग के रेशमी लच्छों की गाँठ के समान उसका कोमल लघु शरीर था। छोटा-सा मुँह और बड़ी-बड़ी पानीदार आँखें। सब उसके सरल शिशु रूप से इतने

प्रभावित हुए कि किसी ने चंपकवर्णा रूपसी के उपयुक्त सोना, सुवर्णा, स्वर्णलेखा आदि नाम से उसे पुकारा गया। मनुष्य की निष्पूरता का शिकार है यह हरिण-शावक। मनुष्य के इस निष्पूरता के कारण सोना को अपने अरण्य-परिवेश और स्वजाति से दूर रहना पड़ा।

स्निग्ध सुनहल रंग के कारण सब उसे सोना कहने लगा। बकरी के दूध में ग्लूकोज एकत्र करके उसे देने लगा। और रात में सोना लेखिका के पलंग के पास सोते रहते थे। दिन भर वह विद्यालय और छात्रावास की विद्यार्थिनियों के निकट रहते थे। वह उन लोगों के प्रिय साथिन बन गई थी। उसे छोटे बच्चे अधिक प्रिय थे, क्योंकि उनके साथ खेलने का अधिक अवकाश रहता था।

लेखिका के बिल्ली गोधुली, कुत्ते हेमन्त-वसन्त, कुत्ती फ्लोरा सब पहले इस नए अतिथि को देखकर रुष्ट हुए, परन्तु सोना ने थोड़े ही दिनों में सबसे दोस्ती कर लिया।

वर्ष भर का समय बीत जाने पर सोना हरिण शावक से हरिणी में परिवर्तित होने लगी। बड़े होने पर उसे अपने वन और स्वजाति की स्मृति आने लगी। और वह सूने मैदान में जाकर अपनों की प्रतीक्षा करने लगी। यह उनका दिनचर्या बन गया।

संयोग से महादेवी जी को बट्टीनाथ की यात्रा पर जाना पड़ा। पालतू जीवों में से वह फ्लोरा को उसके साथ ले चली क्योंकि वह लेखिका के बिना नहीं रह सकती थी। उस समय छात्रावास भी बन्द था। अतः सोना के नित्य नैमित्तिक कार्य-कलाप भी बन्द हो गए थे। लेखिका भी वहाँ नहीं था। इसलिए उसके आनन्दोल्लास के लिए



कम समय मिलता था। उनके जाने के बाद सोना की देखरेख होती रही पर वह बड़ी होकर बाहर जाना चाहती थी।

लेखिका जब बद्रीनाथ यात्रा के बाद वापस आया तो चौकीदार ने उसे एक दुःखद समाचार दिया। उससे यह पता चला कि छात्रावास के सन्नाटे और फ्लोरा के तथा लेखिका के अभाव के कारण सोना इतनी अस्थिर हो गई थी कि इधर-उधर कुछ खोजती सी वह प्रायः कम्पाउण्ड से बाहर निकल जाती थी। इतनी बड़ी हिरनी को पालनेवाले तो कम थे, परन्तु उससे खाद्य और स्वाद प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों का बाहुल्य था। इसी आशंका से माली ने उसे मैदान में एक लम्बी रस्सी से बाँधना आरंभ कर दिया था। एक दिन सोना अपनी बंधन की सीमा भूलकर बहुत ऊँचाई तक उछली और रस्सी के कारण मुख के बल धरती पर आ गिरी। और उसकी मृत्यु हो गयी। इस घटना के बाद महादेवी जी ने तय किया कि अब हिरण नहीं पालूँगी। पर संयोग से फिर उसे हिरन ही पालना पड़ी।

### प्रश्न और उत्तर

प्रश्न: सोना के विभिन्न कार्यकलापों का वर्णन कीजिए।

उ : सोना हिरणी जब लेखिका के साथ हिल-मिल गयी तो उसका दिन भर का एक निश्चित कार्य क्रम गया था। प्रातः दूध और भीगे चने खाकर वह कम्पाऊड में चौकड़ियाँ भरती। फिर छात्रावास जाकर प्रत्येक कमरे का निरीक्षण-सा करती। प्रत्येक छात्रा उसे अपनी नित्य-क्रिया का भागीदार बनाती। मेस में बिस्कुट आदि का नाश्ता कर घास के मैदान में धूब चरती तथा लोट लगाती। भोजन के समय लेखिका के बगल में बैठकर चावल, रोटी

तथा कच्ची सब्जियाँ खाती। घंटी बजते ही प्रार्थना के मैदान में पहुँच जाती और कक्षाओं के चक्कर लगाती। कंपाऊड में बच्चों के साथ खेलती। लेखिका के साथ विभिन्न प्रकार से स्नेह प्रदर्शन करती। रात को लेखिका के पलंग के पास आ बैठती। प्रातः तक वह वहाँ बैठती रहती।

## सदाचार का तावीज

हरिशंकर परसाई

हरिशंकर परसाई का जन्म 22 अगस्त, 1922 को मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले में 'जमानी' नामक गाँव में हुआ था। गाँव से प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद वे नागपुर चले आये थे। 'नागपुर विश्वविद्यालय' से उन्होंने एम. ए. हिन्दी की परीक्षा पास की। इसके बाद उन्होंने स्वतंत्र लेखन प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने जबलपुर से साहित्यिक पत्रिका 'वसुधा' का प्रकाशन भी किया।

हरिशंकर परसाई जी ने खोखली होती जा रही हमारी सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था में पिसते मध्यमवर्गीय मन की सच्चाइयों को बहुत ही निकटता से पकड़ा है। उनकी भाषा शैली में खास किस का अपनापन है, जिससे पाठक यह महसूस करता है कि लेखक उसके सामने ही बैठा है।

मात्र अठारह वर्ष की उम्र में हरिशंकर परसाई ने 'जंगल विभाग' में नौकरी की। वे खण्डवा में छः माह तक बतौर अध्यापक भी नियुक्त हुए थे। उन्होंने दो वर्ष (1941-1943) में जबलपुर में ('स्पेस ट्रेनिंग कॉलेज') में शिक्षण कार्य का अध्ययन

किया। 1943 से हरिशंकर जी वहीं ‘मॉडल हाई स्कूल’ में अध्यापक हो गये। किन्तु वर्ष 1952 में हरिशंकर परसाई ने यह सरकारी नौकरी छोड़ी। उन्होंने वर्ष 1953 से 1957 तक प्राइवेट स्कूलों में नौकरी की। 1957 में उन्होंने नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन की शुरुआत की।

हरिशंकर परसाई जी की पहली रचना है “स्वर्ग से नरक जहाँ तक”, जो कि मई 1948 में प्रहरी में प्रकाशित हुई थी, जिसमें उन्होंने धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास के खिलाफ, पहली बार जमकर लिखा था। धार्मिक खोखला पाखंड उनके लेखन का पहला प्रिय विषय था।

निबन्ध संग्रह- तब की बात और थी, भूत के पाँव पीछे, बेईमानी की परत, पगडण्डियों का जमाना, शिकायत मुझे भी है, सदाचार का ताबीज, और अंत में, प्रेमचन्द के फटे जूते, माटी कहे कुमार से, काग भगोड़ा।

कहानी संग्रह- हँसते हैं रोते हैं, जैसे उनके दिन फिरे, भोलाराम का जीव, दो नाक वाले लोग।

उपन्यास- रानी नागफनी की कहानी, तट की खोज, ज्वाला और जल।

व्यंग्य संग्रह- वैष्णव की फिसलन, ठिठुरता हुआ गणतंत्र, विकलांग, श्रद्धा का दौरा।

संस्मरण- तिरछी रेखाएँ।

हरिशंकर परसाई की भाषा में व्यंग्य की प्रधानता है। उनकी भाषा सामान्य और संरचना के कारण विशेष क्षमता रखती है। परसाई जी अलग- अलग रचनाओं

में ही नहीं, किसी एक रचना में भी भाषा, भाव और भंगिमा के प्रसंगानुकूल विभिन्न रूप और अनेक स्तर देखे जा सकते हैं। प्रसंग बदलते ही उनकी भाषा शैली में जिस सहजता से वांछित परिवर्तन जाते हैं, आते हैं और उससे एक निश्चित व्यंग्य उद्देश्य की भी पूर्ति होती है, उनकी यह कला, चकित कर देने वाली है।

#### सम्मान और पुरस्कार-

-साहित्य अकादमी पुरस्कार- 'विकलांग श्रद्धा का दौर' के लिए।

-शिक्षा सम्मान मध्य प्रदेश शासन द्वारा।

-डी. लिट् की मानद उपाधि, 'जबलपुर विश्वविद्यालय' द्वारा।

- शरद जोशी सम्मान।

अपनी हास्य व्यंग्य रचनाओं से सभी के मन को भा लेने वाले हरिशंकर परसाई का निधन 10 अगस्त, 1995 को जबलपुर, मध्य प्रदेश में हुआ। परसाई जी मुख्यतः व्यंग्य लेखक थे, किन्तु उनका व्यंग्य केवल मनोरंजन के लिए नहीं है। उन्होंने अपने व्यंग्य के द्वारा बार-बार पाठकों का ध्यान व्यक्ति और समाज की उन कमज़ोरियों और विसंगतियों की ओर आकृष्ट किया था, जो हमारे जीवन को दूभर बना रही है। हरिशंकर परसाई ने हिन्दी साहित्य में व्यंग्य विधा को एक नई पहचान दी और उसे एक अलग रूप प्रदान किया, जिसके लिए हिन्दी साहित्य उनका हमेशा ऋणी रहेगा।

## सारांश

साधारण रूप से व्यंग्य कहानियों में बहुत -सी घटनाओं पर आधारित कथावस्तु का समावेश नहीं होता। कथावस्तु कुछेक स्थितियों पर निर्भर रहती है जो हास्य-व्यंग्य की सृष्टि करती है। सदाचार का तावीज़ में भी घटनाओं की जगह पर स्थितियाँ दिखाई देती है।

किसी राज्य की प्रजा में कोलाहल मचा कि राज्य में सब कहीं भ्रष्टाचार ही भ्रष्टाचार है। इससे लोग बहुत परेशान है। राजा को वह खबर सुनकर बड़ी ग्लानी और लज्जा का अनुभव हुआ। उन्होंने दरबार बुलाई और बताया कि हमें आज तक भ्रष्टाचार नामक किसी चीज़ से कोई परिचय नहीं, हमें यह चीज़ कहीं भी दिखाई नहीं देती। दरबार के किसी सदस्य को इसकी जानकारी है तो ज़रा समझायें। दरबारियों ने कहा कि राजा को इसका पता नहीं हैं, तो हमें कैसे पता लगेगा। राजा ने बताया कि हम बुरे सपने नहीं देखते, लेकिन आप लोग देखते होंगे। फिर भी राजा ने दरबार के सदस्यों से अनुरोध किया कि राज्य-भर घूमकर भ्रष्टाचार को ढूँढ निकाले और राजा के सामने लायें। एक दरबारी ने कहा कि आपकी महानता देख-देखकर भ्रष्टाचार जैसी हल्की बारिक चीज़ हमें दिखाई नहीं देगी। भ्रष्टाचार को देखते ही हमें आपका याद आयेगा आपकी सूरत प्रतिबिम्बित होगी। हमारे देश में विशेषज्ञ नाम से एक जाति -विशेष रहता है, वे ही भ्रष्टाचार जैसी बारीक चीज़ को पहचान सकेंगे। इसलिए उन्हें भ्रष्टाचार को ढूँढ निकालने की ज़िम्मेदारी सौंप दें तो अच्छा रहेगा। राजा ने मान लिया। उनके आमंत्रण के अनुसार विशेषज्ञ दरबार में हाजिर हुए। राजा ने विशेषज्ञों से बताया कि आप को कहीं भ्रष्टाचार नामक कोई चीज़ मिल जायें तो पकड़ कर हमारे सम्मुख ले आना। उसी दिन से विशेषज्ञ

भ्रष्टाचार की तलाश में निकल पड़े। दो महीने के बाद वे लौट आये। उन्होंने बताया कि हमें बहुत भ्रष्टाचार मिल गया है। लेकिन उसे हाथ से पकड़ नहीं सके। क्योंकि वह आँख से दिखाई नहीं देता। वह स्थूल नहीं, सूक्ष्म है। वह सुनते ही राजा को शंका हुई कि वह ईश्वर तो नहीं। विशेषज्ञों ने भी मान लिया कि भ्रष्टाचार ईश्वर - जैसा सर्वव्यापी हो चुका है। यहाँ तक कि भ्रष्टाचार इस सिंहासन में भी है। पिछले महीने सिंहासन रंग करने का जो बिल दिया था वह असली बिल नहीं, झूठा बिल है। उन मजदूरों ने दुगुना बिल देकर भ्रष्टाचार किया है। राजा के शासन में इस देश में घूस के रूप में भ्रष्टाचार फैला है।

राजा बहुत चिंतित हुए। वे बड़ी सोच में पड़ गए कि इस भ्रष्टाचार को देश से कैसे मिटायेंगे। विशेषज्ञों ने बताया कि हमने उसके लिए उपाय निकाला है। उन्होंने सलाह दी कि इसके लिए पहले भ्रष्टाचार के मौके मिटाने होंगे। उन्होंने राजा के हाथों इसकी योजना तैयार करके सौंप दी और वे चले गये।

राजा ने दरबार में यह योजना रखी। उन्होंने दरबारियों को सोचने का अवसर दिया। सोचते कई महीने बीत गये, पर कोई फैसला नहीं हुआ। राजा बहुत परेशान हुआ। उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया। दरबारियों ने कहा कि विशेषज्ञों से प्रस्तुत यह योजना ही राजा की परेशानी का कारण है। इसलिए उस योजना को छोड़ दें। अगर हम इस योजना को स्वीकार करेंगे तो हमें इस राज्य की शासन -व्यवस्था को बदलना पड़ेगा। विशेषज्ञों ने हमें बड़ी मुसीबत में डाल दिया है। राजा ने कोई और उपाय निकालने का भार दरबारियों को ही सौंप दिया।

एक दिन एक दरबारी कहीं से एक साधु को लाया। उसने बताया कि इस साधु के पास सदाचार का तावीज़ है। उसे पहनने से आदमी सदाचारी हो जाता है।

यहाँ तक कि कुत्ते के गले में पहनायें तो कुत्ता भी चोरी नहीं करेगा। तावीज़ में से सदाचार की आवाज़ निकलती है। यह आवाज़ आदमी को सदाचार की ओर ले जाएगी। राजा को बड़ी खुशी हुई। उन्होंने साधू की खूब प्रशंसा की। राजा ने हर नागरिक को तावीज़ पहानाने का निश्चय किया। इसके लिए करोड़ों तावीज़ चाहिए। एक दरबारी के सुझाव के अनुसार उसी साधू को तावीज़ बनाकर राजा को सप्लर्ड करने का ठेका दे दिया। राजा ने तावीज़ बनाने का कारखाना खोलने पाँच करोड़ रुपए की पेशगी (Advance) दी। राजा और दरबारी खुश हुए और आश्वस्त भी।

राजा को यह देखने की बड़ी इच्छा हुई कि तावीज़ कैसे काम करता है। वे वेश बदलकर एक कार्यालय (Office) गये। उस दिन दो तारीख थी। राजा ने कर्मचारी को पाँच रुपये का नोट दिया। उसने रुपया नहीं लिया। घूस देने के अपराध में राजा को डाँटने लगा। राजा बहुत खुश हुआ। कुछ दिन के बाद वे फिर वेश बदलकर उसी कर्मचारी के पास गये और फिर पाँच रुपये का नोट दिया। उस दिन महीने की आखिरी दिन था, इकतीस तारीख। कर्मचारी ने नोट लिया और जेब डाल दिया। राजा ने उसे रंगे हाथों पकड़ लिया। राजा ने पूछा कि उसने सदाचार नहीं बाँधा है। उन्होंने तावीज़ पर कान लगाया। उसमें से आवाज़ निकली - “आज इकतीस तारीख है, आज ले लो”।

सदाचार का तावीज़ शीर्षक कहानी में राजनीतिक सत्ताधारियों को गलत दिशा की ओर ले चलने वाले कुछ आश्रितों के आचरण की असंगतियों का पर्दाफाश किया गया है। भ्रष्टाचार एक सांक्रमिक रोग की तरह देश को ग्रस्त कर लिया है। सब लोग उसकी पकड़ में आ गये हैं। भ्रष्टाचार की बीमारी सब कहीं फैल चुकी है। उसे दूर करने की जितनी कोशिश की जाएगी सब बेकार है। कहानी कुछ मनोरंजक

स्थितियों पर खड़ी है। भ्रष्टाचार के बारे में प्रजा की शिकायतें बढ़ना पहली स्थिति है, इस पर दरबारीयों की चर्चा दूसरी स्थिति, भ्रष्टाचार को ढूँढने विशेषज्ञों की नियुक्ति तीसरी स्थिति। इस प्रकार स्थितियों के बाद स्थितियों को प्रस्तुत करते हुए परसाई जी ने कहानी में हास्य-व्यंग्य का रंग महल खड़ा कर दिया है।

### प्रश्न और उत्तर

प्र. 'सदाचार का तावीज़' का उद्देश्य क्या है?

हरिशंकर परसाई व्यंग्यकार है। अनाचारों पर वे वार करते हैं। सत्ताधारी, कर्मचारी और दरबारी लोग व्यवस्था को बदलना नहीं चाहते हैं। अथवा सामाजिक व्यवस्था को बदलना कठिन कार्य बता देता है। मौजूद व्यवस्था में सबको फायदा मिलता है। कर्मचारियों को जो मिलता है उससे वे तृप्त नहीं हैं। वे एक हद तक लालची भी हैं। अधिक कमाने के लिए वे रिश्तत लेते हैं। इससे वे ऐशो आराम से जीते हैं। इसका कुफल समाज पर पड़ता है। अथवा समाज के बारे में, आम लोगों के बारे में सत्तारूढ वर्ग सोचते नहीं। इस वस्तुसत्य को बुलन्द करना ही इस रचना का उद्देश्य है।



## MODULE -3

### सकुबाई

नादिश ज़हीर बब्बर

प्रगतिशील लेखक संघ का संस्थापक सजाद ज़हीर की बेटी नादिरा ज़हीर का जन्म 1948 में महाराष्ट्र के मुंबई में हुआ था। नॉशनल स्कूल ऑफ़ ड्रामा (एन. एस.डी) से उपाधि उन्होंने स्वर्ण पदक के साथ हासिल की। फिर वे छात्रवृत्ति पाती जर्मनी गई। वहां विश्वेत्तर रंग कलाकारों और निर्देशकों के साथ काम करने लगी। वापस आकर अपनी संस्था- एकजुट के द्वारा वे नाटकादी प्रेक्षकोन्मुख क्षेत्र में प्रतिष्ठित हुई। सुप्रसिद्ध अभिनेता राजबब्बर की पत्नी बन कर वे नादिरा ज़हीर बब्बर बन गई। सिनेमा और दूरदर्शन में वे सर्वाधिक लोकप्रिय कलाकारी रह रही है। नाटक के क्षेत्र में अभिनेत्री बन कर वे प्रेक्षकों के आराधना पात्र बनी। निर्देशिका के रूप में वे अतिनूतन सांकेतिका का आविष्कार प्रेक्षकोन्मुख बनाती है। यही उनकी विशेष क्षमता का प्रमाण है। इसलिए ही संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार उन्हें मिला है। विषय का नूतन आयाम, प्रतिपादन की नवीनता, रंगमंच का उलटफेर ये सब परंपरागत शैली को उल्लंघित कर प्रेक्षकों को नवीन सोच प्रदान करने के लिए प्रेरित है। अथवा दृश्य कला के शीर्षस्थ-विराजमान नाटक को वे सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रेक्षकों को नवीन ढंग से सोचने को उनके नाटक प्रेरित करते हैं। अभिनेत्री के रूप में उनके आथेलो, तुगलक, जसमा ओढन, संध्या छाया, बेगम जान आदि सर्वमान्य हैं। प्रसिद्ध चित्रकार मकबूल फिदा हुसैन के जीवन पर आधारित-पेंसिल से ब्रश तक- धर्मवीर भारती के सर्वप्रसिद्ध कृति कनुप्रिया और अंधायुग को और आयाम दिलाने वाले- ऑपरेशन क्लाउडबस्ट्र साहित दर्जनों ऐसे नाटकों का सर्वमान्य अतिनूतन निर्देशन उन्होंने किया था। वास्तव में भारत के रंगमंच को युवा पीढ़ी को इस ओर

आकर्षित करने की सफल भूमिका इन्हीं के द्वारा हुई है। सकुबाईमान्यता के मापदण्ड को नया आयाम प्रदान करने वाला उपहासात्मक नाटक है। मान्यता मध्यवर्गीय कृत्रिम जीवन का विशेष शब्द है। गरीबों, विशेषकर, ग्रामीणों के जीवन संदर्भ में जीवन यथार्थ ही मील पत्थर है। अथवा सामाजिक जीवन में प्रतिष्ठा पाने का मूल शब्द मान्यता है। मध्यवर्ग और ग्रामीण के बीच में फासला रूपायित होने का मूल कारण यह सामाजिक संदर्भ है। वास्तव में यह एक विशेष सामाजिक जीवन का उत्पन्न है अथवा प्रतीत सत्य है, वास्तविकता नहीं है। छोटे ही उम्र में ग्रामीण वातावरण से शहर में आई सकुबाई को अंतरंग मित्र, विश्वासपात्र, सलाहकार, कभी चौकीदार की भूमिका तक अदा करनी पड़ती है। अपने जीवन के प्रति उसके नीर्मल भाव का सत्यांकन प्रतीत है। वह जीवन की ऊर्जा और आत्मबल पर सदा अग्रसर है। वह पाठकों और दर्शकों के पुनः सोचने की प्रेरणा देनेवाला है। इसके ज़रिए कृत्रिम जीवन बिताने वाले आत्मकेंद्रित मध्यवर्ग के लोगों के जीवन की त्रुटियों को परिहास के बारीक सूत्रों में बाँध-कर प्रेक्षकों को प्रभावित करते नज़र आता है। श्रम की गरिमा को बुलंद करनेवाला सकुबाई उसका आदर करने का आह्वान प्रतीत है। अपने चारों ओर दर्शाया जानेवाले सौकडों सकुबाईयों को ठीक तरह से पहचानने को यह नाटक प्रेरित करता है।

### सारांश

सकुबाई हमें अपने घरों में काम करने वालों के जीवन में झाँकने का मौक़ा देती है। ये कहानी बहुत छोटी उम्र में रोटी कमाने के लिए बाध्य होकर शहर में आयी सकुबाई के जीवन और समय को बड़ी दक्षता से दर्शाती है। घर के काम करने

के साथ-साथ वो कभी अन्तरंग मित्र, विश्वासपात्र सलाहकार और कभी चौकीदार की भूमिकाएँ भी निभाती है।

सकुबाई अपनी ज़िन्दगी के अनुभवों और कारनामों का विस्तृत ब्योरा स्वयं बहुत सूक्ष्म परिहास के धागों में पिरोकर प्रस्तुत करती है।

ये नाटक आपको बाध्य करता है तथाकथित उच्चवर्गीय, सुसंस्कृत, पढ़े-लिखे और सामाजिक रूप से संवेदनशील समाज के पाखण्ड, ढोंग के बारे में सोचने के लिए और प्रेरित करता है एक साधारण निम्नवर्गीय समाज के स्त्री के मनोबल और खुद की मदद करने की ताकत से सीख लेने की।

फिर हमें ये सोचने पर मजबूर करता है कि हमसे कितने लोग वास्तव में श्रम की गरिमा का मूल्य जानते हैं और उसकी कद्र करते हैं।

सकुबाई किशोर कपूर- पूजा दंपतियों के घर में नौकर के रूप में काम करती है। किशोर और पूजा को दो बच्चे हैं। तेरह-चौदह साल की एक बेटी जिसका नाम है पोमला। पहले तो सकुबाई पोमला बोलना बहुत कठिन थी फिर वह सीख गयी। दूसरा बच्चा आठ साल का एक बेटा जिसका नाम है रैकी। वह एक मस्तीखोर लड़का है। क्रिकेट, टी.वी. देखने में शौक। रैकी को खाना खिलाने के लिए सकुबाई को उनके पीछे दौड़ने पड़ते थे। तब सकुबाई अपनी गाँव के बच्चों के बारे में याद करती है कि अपने दरिद्र साहचर्य में बिस्कुट देखते ही बच्चे दौड़ आते थे। पन्द्रह साल से सकुबाई यहाँ काम कर रही है। छुट्टी तो उन्हें बहुत कम मिलती थी।

सकुबाई जब सात साल की थी तब से काम पर लग गई। सकुबाई का उसली नाम शकुन्तला है। माँ का नाम लक्ष्मी बाई तुकराम जामड़े। सकु को एक बहिन और

एक भाई भी थे। बहिन का नाम है वासन्ती और भाई नितिन जिन्हें गोदुय नाम से पुकारते थे। सकु के पिता के चार भाई थे। पिता का सीधा हाथ थोड़ा टेढ़ा था। फिर भी वो खेतों में दिन-रात मेहनत करते थे। बचपन से ही माँ-बाप के साथ सकू भी खेत में काम करनी थी। पाठशाला जाने की इच्छा प्रकट की तो माँ ने ज़ोर से एक थप्पड़ मारा और अपने साथ काम करके घर को संभालने की आज्ञा थी। सकु और उसकी बहन वासन्ती दोनों पाठशाला नहीं गयीं। नितिन लड़का होने के नाते उसे स्कूल भेज दिया। सकु के परिवार कठिन मेहनत करने पर भी खाना पूरा नहीं मिलता था। उसके पिता और काका लोगों में अनाज के बटवारा को लेकर हमेशा झगड़ा होना था। क्योंकि पिता का हाथ टेढ़ा है। पिता सब चुपचाप सह लेता था। दादी के मरने के बाद नानी और मामा बंबई से आए। नानी जब उ लोगों की हालत देखी तो बहुत दुःखी हुए और माँ को बंबई आकर काम करने का सुझाव दिया। तो माँ और सकु, नितिन को साथ लेकर बंबई जाने का निश्चय किया। नितिन को अच्छी शिक्षा दे पाऊँगा इसी उद्देश्य से नितिन को बंबई लेकर आये थे। पिताजी और वासन्ती को गाँव पर छोड़ दिया ताकि ज़मीन थोड़ी बहुत जो है, बनी रहे।

जब सकु अपनी कहानी बता रही थी तब वार्शिंग पाउडर का डेमोस्ट्रेशन के लिए एक लड़की आती है तो उसे वह अन्तर न आने देती है। उस लड़की की पहनावा सकु को अच्छी नहीं लगती। घर-घर घूमने के बारे में सकू कहती है कि अनपढ़ घूमती है भोजन के लिए अब पढ़े-लिखे लोग भी भोजन के लिए घर-घर घूम रहे हैं। जब सकु की माँ मुंबई आई तो नौवारी साड़ी पहनकर काम करती थी। जिस सेठानी के यहाँ माँ काम करती थी वो मारवाड़ी थी। उनका शिकायत थी कि नौवारी

साड़ी पहनने से पाँव दिखाता है। इसलिए वह गोलवाली साड़ी पहनने को कहा। माँ को गोलवाल साड़ी पहनना अच्छा नहीं लगता था। और उसे यह पहनना आता भी नहीं था। इसलिए वह कास्टों के यहाँ हाथ रखकर झाड़ू मारने लगी। एक दिन माँ को बहुत गुस्सा आया और उसने गुस्से में गोलसाड़ी का कास्टा बनाकर काम करने लगी। यह देखकर नितिन उसे हनुमान कहकर हँसी उठाई। तंगा आके एक दिन माँ ने मारवाड़ी सेठाइन से साफ कह दिया - “मेम साब। हम यहाँ काम करने आए हैं। अपना रिवाज़ बेचने नहीं। मैं आज से गोलवाली नहीं नौवारी साड़ी पहनूँगी। रखना है तो रख नहीं तो राम-राम।”

पन्द्रह-सोलह साल के आसपास सकु माँ का साथ देकर घरेलू काम करती थी। रूंगडा साहब की याद करती है वह। वह एक धनी व्यापारी थे। उसका एक ऑट हाऊज में सकू काम करनी थी। वह वहाँ रहने नहीं थे उन्होंने वो घर उस समय की मशहूर फिल्मों की नारिका सुरेखा रानी को दे रखा था। सुरेखा का उम्र करीब चालीस साल की होगी। रोज़ शाम को रूंगडा साहब वहाँ आते थे। उसका स्वागत सुरेखा लास्य से करती थी। साथ पीती भी थी। मछली आदि फ़्रै कर सकु की माँ देनी थी। श्रमार चेष्टायों करके सुरेखा सेठ को अपने वश में कर देती थी। नशे में दोनों नाचने थे। देर शता में सेठ वापस जाता था। सेठ को सुरेखा के यहाँ दूसरा सुख ही मिलता था।

मुंबई आकर सकु और उसकी माँ सात-आठ घरों में काम करके छह -सात हज़ार कमा लेते थे। उसमें से ढाई हज़ार सकु की पिताजी और बहन के लिए गाँव भेज देती थी। बाकी में उन लोगों का खाना और नितिन की पढ़ाई होती थी। लेकिन एक बात उसे बहुत बुरी लगती थी वह यह है कि बंबई के बाहर के लोग यहाँ आते

हैं, वे लोग सकु को घाटी-घाटी कहकर पुकारते हैं। जब सकु जवान हो गई तब वह फ्राक छोड़कर पंजाबी ड्रेस पहनने लगी। उस समय सकु, माँ और नितिन मामा लोगों के साथ ही रहते थे। एक ही कमरा था। कमरे पर माला डला हुआ था। माले पर बड़े मामा की छोटी लड़की। सकु और उसकी माँ, छोटे मामा, नितिन आदि सोते थे। एक दिन सकु जी तोड़ मेहनत कर रही थी। माँ काम पर लगी हुई थी। छोटे मामा ने नींद में उसका बालात्कार किया। सकु बेहोश होकर सोई। दूसरे दिन कपड़े में खून पाकर सकु वह कपड़ा माँ के नज़र बचाकर फेंकना चाहा। लेकिन माँ को मालूम हो गया। तब उसे पिछली रात हुई घटना के बारे में बताना पड़ा। गुस्से में आकर माँ ने वह कपड़ा मामा के सामने फेंक पेश किया। मामा ने यह अनदेखा कर दिया। माँ ने मामा को मारा भी है। बड़े मामा कुछ भी न कहा। नितिन को साथ लेकर वह और माँ वहाँ से निकली। कुछेक दिन जहाँ वे काम करते थे वही बिल्डिंग की सीढ़ी पर बेधर सोने लगे।

एक दिन डेक्की चलानेवाले हुसैन मामा मिल गए। उन्हें इन लोगों के हालत पर तरस आया और उनके घर के आधा हिस्सा इनको किराये पर दिया। मामा वाली बात किसी को भी, यहाँ तक पिताजी को भी न बोलने का अनुरोध माँ ने किया। क्योंकि शादी तो होना है और औरत को क्या न झेलना पड़ता है। तीन-चार साल माँ ने बहुत मेहनत की। सकु, नितिन और माँ साल में कभी हफ्ते-दस दिन के लिए गाँव जाते थे। सकु के पिताजी कभी भी खुश दीखता नहीं था। छोटी बहन वासंती अब जवान हो गई और देखने में भी बहुत सुंदर थी। वासन्ती रिक्शेवाल अहमद के साथ प्रेम संबंध था। इसलिए वासन्ती की शादी जल्दी-जल्दी कराने के बारे में माँ-बाप सोच रहे थे। लेकिन सकु बड़ी होने के कारण उसकी शादी पहले करा दी गयी। सकु

की पति का नाम यशवन्त धाध, जो बंबई में ही रहनेवाला है। वो थाने की चूँगी पर काम करता था। अच्छा-भला आदमी था। फिर भी पड़ोस की मिश्राजी की पत्नी के साथ अवैध संबंध था। आगे भी उस स्त्री की प्रेरणा से वह संबंध जारी रही। सकु भगवान से प्रार्थना करती रही अथवा उस चुडेल से मुक्ति पाना असंभव है।

इसी बीच सकुबाई को साहिब के ऑफिस की लड़की की फोन आती है। उसके बाद सकुबाई उस लड़की के बारे में कहने लगी। वह लड़की मेंम साब के आते तक, घंटों तक, घर पर साहब से बातें करती है। सकु जब बीच में आई तो दोनों अंग्रेज़ी में बातें करते हैं। डिस्क स्लिप होकर साहब घर पर लेटा हुआ था तब उनके ऑफिस से कई लोग उनको देखने आते थे। एक दिन वो भी आ गई। मेंम साब घर पर नहीं थी। यह तो बहुत टाइट फ्राक पहनकर आयी थी। और सीधे साहब के कमरे में घुस गई। सकु साहब के कमरे में गई तो उसने देखा कि दोनों सटकर चूमते रहे हैं। एक दिन इन दोनों का अवैध संबंध मेंम साहब को पता चला। तो वह यह घर छोड़कर अपनी माँ के पास जाना चाहती है। तब सकुबाई ने उसे यह कहकर उसे रोख दिया कि यह उसका घर है। उसका अपना बाल-बच्चे हैं। साथ ही ब्यूटी पार्लर का काम भी है। तो यह सुनकर मेंम साब वहीं रह गई। साथ ही उसे भी कोई दूसरा बड़ा लवली साहब मिल गया।

सकु के पति को मिश्राइन छोड़ चुकी थी क्योंकि उसे एक नारियवाल शंभु मिल गयी थी। वह सकु के पति से भी ज़्यादा लगड़ा और पैसा वाला था। मिश्राइन के छोड़ने के बाद उसके पति यशवंत प्यारा आदर्श पति बन गया था। बिटिया को अच्छी शिक्षा वह देना चाहता है। एक दिन गाँव से खबर आई कि सकु की बाबा बहुत सीरियस है। वह पति के साथ गाँव जाकर बाबा से मिला। यशवंत बाबा को

बंबई ले जाकर बड़े हास्पिटल में दिखाना चाहते थे। लेकिन उसी दिन वह मर गया। वासन्ती रिक्शेवाले के साथ भाग गयी थी। माँ को भी सकु मुंबई ले आया। माँ कुछ दिन तक उसके साथ रही बाद में नितिन के साथ अलग घर लेकर वहाँ रहने लगी। माँ फिर से काम करने लगी। इसी बीच कुछ पैसे के माँग के साथ वासन्ती का पत्र आयी। सकु छुपके से पैसा जुड़ाकर वासन्ती से मिलने गई तो पता चला कि वासन्ती किसी बंगाली के साथ कलकत्ता भागद गई। फिर किसी ने बताया कि वो बंबई में ही है।

एक दिन एक पुलिसवाला घर पर आया। और बताया कि सकु की बहन वासन्ती ने आत्महत्या कर ली। लाश को पहचानने के लिए अस्पताल चलना होगा। याने में यानेदार ने कहा कि लाश मिलना है तो मां को भी बुलाना है। यशवंत माँ को लाया फिर वे अस्पताल पहुँचे। वहाँ के लोग लाश खेल रहे थे। यशवंत दो सौ रुपया देने के कारण फान में लटककर मरी वासन्ती का लाश मिल गया। उसकी अंतिम क्रिया-करम यशवंत और नितिन ने की।

यादों के बीच डोर बेल बजी। वो फूलवाला था। सकु ने उसे भरा -बुरा कहकर भगा दिया। और फिर से यादों में डूबी। तभी टेलिफोन की घण्टी बजती है। वह खन्ना भाभी का फोन था। फोन रखने के बाद सकु खन्ना भाभी के बारे में बताते हैं. वह एक फैशनबल और बड़ी चालाक औरत है। पार्टी में आकर अपना सबकुछ दिखाकर चोरी भी करनेवाली है। उस पार्टी में वह भी आयी हुई थी। बाहर के बाथरूम में कोईज़ था तो खन्ना भाभी बेडरूम वाले बाथरूम में गई। उसी समय बाथरूम में टॉवल रखने के लिए सकु वहाँ आयी तो उसने देखा कि ये औरत में साब की मोकअप वाली टेवल की दराज में से कुछ निकालकर पर्स में रख रही है। सकु



यह बात अपने में साब से कह दी तो उसे विश्वास नहीं हुआ। फिर में साब ने तहाज चेक की तो पता चला कि उनकी हीरे की अँगूठी गायब है। डॉस करते वक्त सकु खन्ना भाभी के पर्स से अँगूठी निकालकर में साब को वापस देती है।

सकु की भाई नितिन के पत्नी है सुमन। सकु को सुमन बहुत पसंद है। सुमन एक अच्छा औरत है। उनके दो बच्चे है एक लड़का एक लड़की। लड़के का नाम अजिन और लड़की का नाम मीना। सुमन सकु की बहुत मदद करती थी। यशवंत बीमार होते वक्त वही सहायता करती है। यशवंत को एड्स हुआ था। तो डाक्टर ने कहा कि सकु और बिटिया के खून का तपास करना है। रिपोर्ट आयी तो दोनों को एड्स नहीं था। तो यशवंत के साथ उसका संपर्क मन कर दिया गया। यशवंत स्वयं अपने गाँव गया। छह महीने तक जिएगा। महीने में एक बार जाकर मिलता था। वह कमज़ोर होकर एक दिन मर गया।

एक दिन उसकी बिटिया सलोनी का चित्र अखबार में आया। वह अच्छी पढ़ती है और अच्छी लिखती भी है। वो कविताएँ लिखती है। उसको युवा -कवियत्री का इनाम मिला था। वह सकु को पढ़ने के लिए कहती है। जब वह छोटी थी तो माँ ने इसी बात पर उसे थप्पड़ मारा था। आज बिटिया की सम्मान समारोह है। तो वह प्रोग्राम में सकु सीधे काम पर से चली गई। तो वॉचमैन ने वहाँ रोक दिया। और वह वापस आकर अच्छी साड़ी पहनकर गई। स्टेज में विशिष्ट व्यक्तियों के बीच प्रविष्ट बिटिया साईली अपनी माँ को बुलाकर स्टेज में बिठा कर अपनी कविता सुनाती है। वह अपनी कविता माँ माँ सकु को आदर्श-प्यारी - कर्मठ- नेक औरत बताती है।

## संप्रसंग व्याख्या कीजिए

हम तो एकदम अनपढ़ हैं। ... ए देवा ss क्या जमाना आ गया है। पढ़े-लिखे लोग भी घर-घर घूमते हैं। और अनपढ़ भी। .... चलो इस बात में तो हम लोग बराबर हुए।

यह भाग नादिरा जहीर बब्बर के नाटक 'सकुबाई' से लिया गया है।

प्रगतिशील लेखक संघ का संस्थापक सजाद ज़हीर की बेटी नादिरा ज़हीर का जन्म १९४८ में महाराष्ट्र के मुंबई में हुआ था। सिनेमा और दूरदर्शन में वे सर्वाधिक लोकप्रिय कलाकारी रह रही हैं। नाटक के क्षेत्र में अभिनेत्री बन कर वे प्रेक्षकों के आराधना पात्र बनीं। निर्देशिका के रूप में वे अतिनूतन सांकेतिका का आविष्कार प्रेक्षकोन्मुख बनाती हैं। यही उनकी विशेष क्षमता का प्रमाण है। इसलिए ही संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार उन्हें मिला है। विषय का नूतन आयाम, प्रतिपादन की नवीनता, रंगमंच का उलटफेर ये सब परंपरागत शैली को उल्लंघित कर प्रेक्षकों को नवीन सोच प्रदान करने के लिए प्रेरित हैं। अथवा दृश्य कला के शीर्षस्थ-विराजमान नाटक को वे सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रेक्षकों को नवीन ढंग से सोचने को उनके नाटक प्रेरित करते हैं। अभिनेत्री के रूप में उनके आथेलो, स तुगलक, जसमा ओढन, संध्या छाया, बेगम जान आदि सर्वमान्य हैं।

सकुबाई हमें अपने घरों में काम करने वालों के जीवन में झाँकने का मौका देती है। ये कहानी बहुत छोटी उम्र में रोटी कमाने के लिए बाध्य होकर शहर में आयी सकुबाई के जीवन और समय को बड़ी दक्षता से दर्शाती है। घर के काम करने के साथ-साथ वो कभी अन्तरंग मित्र, विश्वासपात्र सलाहकार और कभी चौकीदार की

भूमिकाएँ भी निभाती है। सकुबाई किशोर कपूर- पूजा दंपतियों के घर में नौकर के रूप में काम करती है।

सकुबाई जब काम कर रही थी तब वहाँ डिटेर्जेंट बेचने के लिए एक लड़की आती है। वह अपनी परिचय देकर कहती है कि वह सुपरवाइटर डिटेर्जेंट कंपनी की तरफ से आए हैं, वाशिंग पाउडर का डेमोस्ट्रेशन देने के लिए। लेकिन सकुबाई उसे घर के अंदर नहीं आने देती और उसे भागा देती है। तब सकुबाई बताती है कि पढ़ी-लिखकर होकर भी इसे भी हमारी तरफ घर-घर घूमने पड़ती है। ज़माना ऐसा आ गया है कि हम जैसे अनपढ़ की तरह पढ़े-लिखे लोग भी घर-घर घूमते पड़ते हैं। अनपढ़ घूमती है भोजन के लिए अब पढ़े-लिखे लोग भी भोजन के लिए घर-घर घूम रहे हैं। इस तरह अनपढ़ और पढ़े लिखे लोग के बीच अब कोई भेद नहीं रहा।